हम कि ठहरे अजनबी

निरंजन सहाय

पुस्तक समीक्षा में इस बार प्रो. कृष्ण कुमार की पुस्तक 'प्रैजुडिस एण्ड प्राइड' के हिन्दी अनुवाद 'मेरा देश तुम्हारा देश' की समीक्षा प्रकाशित कर रहे हैं।

उर्दू के मशहूर शाायर फैज अहमद फैज ने अपनी एक गजल में कहा-

'हम कि ठहरे अजनबी, इतनी मुलाकातों के बाद,
फिर बनेंगे आशना कितनी मुलाकातों के बाद।'

भारत और पाकिस्तान के साझे अतीत के बावजूद दोनों देशों की इतिहास दृष्टि या इतिहास बोध में जो फर्क है, वह अजनबियत की इसी प्रयासपूर्वक अर्जित अवधारणा का कमाल है। वर्तमान के दबाव अतीत की पुनर्रचना पर किस कदर हावी होते हैं, इसे समझने के लिहाज से कृष्ण कुमार की किताब 'मेरा देश तुम्हारा देश' एक नायाब नजीर है। भारत और पाकिस्तान के स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास पुस्तकों में 'राष्ट्रवाद' की वर्तमान समझ के मद्देनजर कुछ घटनाएं छोड़ दी जाती हैं, तो कुछ के चित्रण और विश्लेषण पर अतिरिक्त बल और उत्साह सक्रिय रहता है। एक ही व्यक्तित्व कहीं दैवी नायक की गरिमा अर्जित करता है तो कहीं प्रारब्ध की वह खौफनाक सचाई जो शत्रु पड़ोसी की अस्मिता को समाप्त करने के लिए आतुर रहता हो। 1857 की क्रांति से 1947 की आजादी के बीच की अनेक शख्सियतें और घटनाएं, जैसे-सर सैयद अहमद खां, महात्मा गांधी, मुहम्मद अली जिन्ना, खिलाफत आंदोलन, लाहौर अधिवेशन और जिन्ना की वह 14 सूत्री मांग जो जवाहर लाल नेहरू को बतौर कांग्रेस प्रतिनिधि सौंपी गई थी आदि के माध्यम से पाठ्पुस्तकों की दृष्टि का जो विन्यास 'मेरा देश तुम्हारा देश' के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, वह अपने ढ़ंग का अकेला और विलक्षण उदाहरण है।

कृष्ण कुमार की यह पुस्तक अंग्रेजी में 'प्रैजुडिस एंड प्राइड' शीर्षक से, पेंग्विन बुक्स से 2001 में प्रकाशित हुई थी। पर हिन्दी संस्करण की विलक्षणता कुछ नए संदर्भों और परिस्थितियों के कारण पहले से कहीं ज्यादा मौजू है। बकौल लेखक, 'हिन्दी में यह पुस्तक जिस माहौल में आ रही है, वह अंग्रेजी मूल के प्रकाशन के वक्त फैली उमस से काफी भिन्न है। एक तरफ भारत और पाकिस्तान के राजनैतिक रिश्तों में बदलाव आया है, दूसरी तरफ इतिहास की पाठ्यपुस्तकों की रचना-प्रक्रिया में एक अप्रत्याशित मोड़ आया है। शैक्षिक सुधारों की रफ्तार पाकिस्तान में फिलहाल बहुत धीमी है, पर सुगबुगाहट वहां भी है। इस बीच ढाई दशक में ढाई कोस चला सार्क थोड़ा हिला है और लगता है, कम से कम चार-छह कदम कुछ तेज चलेगा। दक्षिण एशिया में शांति और सद्भाव की वृहत्तर अस्मिता के विकास में यह पुस्तक हिन्दी में पुनर्जन्म लेकर कुछ न कुछ बुनियादी सहयोग जरूर देगी, ऐसी मुझे आशा है।' पुस्तक के हिन्दी संस्करण की महत्ता इस लिहाज से भी बढ़ जाती है कि पुस्तक के अंत में भारत और पाकिस्तान की पाठ्यपुस्तकों में मौजूद इतिहास दृष्टि, विश्लेषण

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में पी.एच.डी. और पेश ो से प्राध्यापक। समकालीन शैक्षिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर निरंतर लेखन। एन.सी.ई.आर.टी. समेत विभिन्न विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम समिति सदस्य रहे हैं। इग्नू (दिल्ली), कोटा खुला विश्वविद्यालय, जैन विश्वभारती (लाडनू) के पाठ लेखन से सम्बद्ध। 'केदारनाथ सिंह और उनका समय' आलोचना पुस्तक 2008 में प्रकाशित। 'शिक्षा और सरोकार' पुस्तक प्रेस में।

सम्पर्क :

इन्द्रप्रस्थ कॉलोनी, नीमच रोड, कानोड़, जिला-उदयपुर, राजस्थान, पिन-313604

का तरीका और वर्तमान की चुनौतियों एवं सवालों से संबंधित एक बेहद प्रभावी और प्रासंगिक साक्षात्कार भी जोड़ा गया है, जो अपूर्वानन्द द्वारा लेखक से लिया गया है। स्वयं लेखक इसे एक महत्त्वपूर्ण पक्ष मानते हैं, 'हिन्दी का नाम ही बताता है कि वह एक बड़े सपने की भाषा है। भारत-पाकिस्तान के जड़ राष्ट्रीय बैर और युद्ध की छाया में जीने के आदी मेरे सरीखे करोड़ों लोगों की भावनात्मक जिन्दगी की भाषा तो वह है ही। मेरे मित्र अपूर्वानन्द ने इसके कई अनछुए आयामों को 'बहुवचन' में प्रकाशित इंटरव्यू में उभारा था। इस बातचीत का समूचा आलेख हिन्दी संस्करण में शामिल किया जा रहा है जो मूल पुस्तक के मुकाबले अनुवाद को समृद्धतर बनाता है।' यानी हिन्दी में प्रकाशित 'मेरा देश तुम्हारा देश' की प्रासंगिकता अंग्रेजी संस्करण 'प्रैजुडिस एंड प्राइड' से अलग और विशिष्ट है।

राष्ट्रवाद की अलग-अलग अवधारणाओं ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम और आजादी के बाद के भारतीय प्रायद्वीप के दो प्रमुख देशों यानी भारत-पाकिस्तान के साझे अतीत की पुनर्रचना को कैसे प्रभावित किया है ? विषय के रूप में 'इतिहास' की स्वायत्तता को समकालीन राजनैतिक विन्यास और दबाव कैसे प्रभावित करते हैं ? इतिहास लेखन-अध्यापन के क्या किसी ऐसे वैकल्पिक परिदृश्य की कल्पना की जा सकती है जो भारत-पाकिस्तान के शत्रुतापूर्ण रवैए या रिश्ते की जमी हुई बर्फ को पिघला सके ? क्या शिक्षा में वह क्षमता पैदा करना संभव है, जो लोकतांत्रिक अवधारणा के पक्ष में सक्रिय हस्तक्षेप या प्रतिरोध को रचने की योग्यता पैदा करे ? क्या वर्तमान की विरूपताओं या अतीत की शत्रुताओं के बरक्स सकरात्मक भविष्य दृष्टि के पक्ष में अध्ययन से कोई समझ अर्जित की जा सकती है ? क्या राष्ट्रवाद की इस्लाम प्रेरित या हिन्दुत्व प्रेरित समझ के समानान्तर विकासशील उदीयमान राष्ट्र के इतिहास लेखन का कोई सिरा उस भविष्य दृष्टि से जुड़ सकता है, जो भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के लिए फिलहाल एक अपरिहार्य आवश्यकता है ? इन सभी सवालों से यह पुस्तक न सिर्फ टकराती है, बल्कि हमारे प्रचलित अर्जित इतिहास बोध पर पुनर्विचार के लिए भी उकसाती है।

पुस्तक : मेरा देश तुम्हारा देश
लेखक : कृष्ण कुमार
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2007
मूल्य : 300 रुपए (सजिल्द)

भारत के स्कूलों की दस इतिहास पुस्तकों और पाकिस्तान के स्कूलों की आठ इतिहास पुस्तकों के आधार पर इस शोध को पूरा किया गया है, जिनमें स्वाधीनता संग्राम, विभाजन और स्वाधीनता के बाद के कालखंड का चित्रण है। पुस्तक का एक बेहद रोचक और गौरतलब पक्ष यह है कि इन मुद्दों पर भारत और पाकिस्तान में अध्ययनरत 145 बच्चों के द्वारा लिखवाए गए निबंधों का विश्लेषण भी है, जिनसे इस मुद्दे से जुड़े अनेक पहलुओं को समझने में सहूलियत होती है। पूरी पुस्तक बारह अध्याय और एक साक्षात्कार में विभाजित है, जिनके तीन खंड बनाए गए हैं-पहले भाग का शीर्षक है 'अतीत की चुनौती', दूसरे भाग का 'विरोधी इतिहास' और तीसरे भाग को 'भविष्य की सम्भावनाएं' के अंतर्गत शामिल किया गया है। अध्याय एक 'प्रवेश' शीर्षक से प्रकाशित है। इस अध्याय में कृष्ण कुमार ने उन जरूरतों को विस्तार से रेखांकित और विश्लेषित किया है, जिनके चलते दो पारंपरिक प्रतिद्वन्दी राष्ट्रों के इतिहास के व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है। लेखक इस तरह की जरूरत को रेखांकित करते हुए हमारा ध्यान दो देशों के साझे इतिहास लेखन की ओर आकर्षित करते हैं, 'भारत और पाकिस्तान के इतिहासकारों की ऐसी किसी मिली-जुली कोशिश का कोई रिकॉर्ड नहीं मिलता जैसी जापान और दक्षिण कोरिया के इतिहासकारों ने पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करने के लिए की है।' लेखक ने अध्ययन की सार्थकता के अन्य आयामों का भी उद्घाटन किया है। विषय के रूप में भारत और पाकिस्तान के स्वाधीनता संग्राम को चुने जाने के सिलसिले में अपनी रूचि की सार्थकता का खुलासा करते हुए कहते हैं, 'मेरा मुख्य तर्क था कि आधुनिक काल के इतिहास में बच्चों को सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन से जोड़ने की सामर्थ्य मध्यकाल या प्राचीन इतिहास के मुकाबले अधिक है। प्राचीन इतिहास का भी अध्ययन होना चाहिए। संभवतः पुरातात्विक अभिरुचि के साथ, लेकिन आधुनिक काल, जिसमें उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष और आजादी के बाद का काल शामिल है, वह एक विस्तृत जांच-पड़ताल का दायरा बन सकता है। शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से भी यह चुनाव बच्चों को स्त्रोत सामग्री, साहित्य और जीवनी के सुविधाजनक इस्तेमाल की संभावना देता है।' जाहिर है इस इतिहास का रिश्ता दोनों देशों के भावी सरोकारों से मध्यकालीन या प्राचीन

इतिहास की अपेक्षा अधिक है। साथ ही शिक्षाशास्त्रीय सरोकारों के लिहाज से भी यह दृष्टि अधिक तर्कसंगत, समकालीन और विस्तृत है। दुर्भाग्यवश भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में इतिहास अध्ययन का अधिकांश हिस्सा प्राचीन और मध्यकाल से जुड़ा है और स्वाधीनता संघर्ष एकदम आखिरी हिस्से में समाहित होता है। अनेक प्रसंगों में तब तक विद्यार्थी सत्रपर्यंत अध्ययन की ऊब या थकान से गुजर रहे होते हैं। लेखक का यह कहना उल्लेखनीय है कि यदि अध्ययन के इस प्रसंग को संवेदनशीलता से समाहित किया जाए तब इससे उस बैरीभाव सोच की जड़ों तक पहुंचने में सहूलियत होगी, जिसके चलते भारत और पाकिस्तान के युवा ग्रसित हैं।

'बच्चे और अतीत अध्याय' में बच्चे और अतीत के जटिल रिश्ते के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। कृष्ण कुमार कहते हैं विधिवत इतिहास अध्ययन के पहले ही बच्चे का सामाजीकरण विरासत की सोच के अनुरूप हो जाता है। स्कूल के द्वारा प्राधिकृत रूप में प्रचलित इतिहास अध्ययन की मूल चिंता यह होती है कि इसका विशेष ध्यान रखा जाए कि राष्ट्र-राज्य जैसी महान सामूहिक संस्थाएं ऐतिहासिक वर्तमान में कैसे कार्य करती हैं ? अध्याय दो उप शीर्षकों में विभाजित है- 'प्राथमिक सामाजीकरण' और 'स्कूल में शिक्षा प्राप्ति'। दुर्खाइम को उद्धृत करते हुए कृष्ण कुमार कहते हैं, ऐसी संस्कृति की संकल्पना मुश्किल है, जिसने भावी पीढ़ी के लिए सामूहिक स्मृति को नहीं संजोया हो। इस अतीत संरचना में धार्मिक-पौराणिक कथाओं और इतिहास का सांयोगिक मिश्रण होता है। ज्ञान के इस संग्रह की छवियों में धार्मिक इतिहास, लोककथाओं, सामुदायिक जीवन के कर्मकाण्डों की उपस्थिति होती है। 'स्कूल में शिक्षा प्राप्ति' खंड के अंतर्गत स्कूल में अर्जित अतीत ज्ञान की व्याख्या करते हैं। उनका कहना है प्राथमिक सामाजीकरण के बाद स्कूल द्वारा प्रस्तावित अतीत की मूल चिंता होती है कि राष्ट्र के अतीत को इस तरह परोसा जाए कि बच्चे आज्ञाकारी नागरिक की भूमिका निभाने के लिए तैयार हो सकें। अतीत के इस अध्ययन के दौरान विद्यार्थी दो तरह की चुनौतियों का सामना करते हैं। पहली तो वह जिसे स्कूल में पहले के सामाजीकरण के दौरान अर्जित किया गया और जिसे स्कूल स्वीकार करने से इंकार कर देता है और दूसरा वह जो पाठ्यक्रम की रूपरेखा और पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु से संबंधित है, जिसमें संज्ञान के विकासात्मक पहलुओं की अनदेखी हो जाती है। बकौल कृष्ण कुमार, 'उसके परिणाम विषय के उबाऊ लगने एवं परीक्षा में खराब प्रदर्शन से कहीं ज्यादा गंभीर' होते हैं।

'आम अनुभूतियों के चौखटे' शीर्षक तीसरे अध्याय में, यह व्याख्यायित करने का प्रयास है कि कैसे स्वाधीनता संग्राम इतिहास के एक अध्याय के रूप में भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में अलग-अलग रूप में प्रस्तुत है। दरअसल दोनों देश राष्ट्र निर्माण की अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार, अलग-अलग अतीत गढ़ते हैं। पाकिस्तान का जन्म स्वाधीनता संग्राम के बाद हुआ। जहां उसके जन्म के पीछे विभाजन की केन्द्रीय भूमिका है, वहीं भारत का भविष्य उस नींव पर टिका है, जहां स्वाधीनता संग्राम के दौरान एक धर्मनिरपेक्ष विचारधारा विकसित और प्रतिष्ठित हुई। इन दो भिन्न दृष्टियों के चलते इतिहास अध्यापन के तरीके में भी अंतर आ जाता है। वे गांधी और जिन्ना का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि कैसे दोनों व्यक्तित्व स्वाधीनता आंदोलन के अधूरे काम के अनुस्मारक के रूप में इतिहास अध्ययन में शामिल हैं। बकौल कृष्ण कुमार, 'दोनों देशों में राष्ट्र निर्माण की विचारधारा अपने ढंग से अतीत की कहानी गढ़ती है। फिलहाल मैं परस्पर गुंथी हुई अनुभूतियों के उन खाकों पर ध्यान केन्द्रित करूंगा जिनका इस्तेमाल दोनों ही देशों में, अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को प्रकट करने के सन्दर्भ में 'अन्य' की ओर इशारा करते हुए किया जाता है।'

भारत और पाकिस्तान दोनों देश एक-दूसरे का इस्तेमाल खुद को परिभाषित करने के दौरान करते हैं। 1980 में भारतीय विश्वविद्यालयों में 'धर्मनिरपेक्षता' शिक्षा दर्शन के एक पाठ्यक्रम के रूप में सम्मिलित हुआ। लेखक का कहना है, तभी से कांग्रेस की मध्यमार्गी राजनीति दक्षिण पंथ की तरफ झुकने लगी। भारत में पाकिस्तान से अधिक मुसलमान हैं, बावजूद इसके भारत की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि पर दक्षिण पंथ का प्रहार जारी रहा, जिसका असर आम अनुभूतियों के चौखटों पर भी पड़ा। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में एक-दूसरे के प्रति असुरक्षा भावना का उपयोग सैन्य तैयारियों के लिए किया जाता है। जबकि दोनों देशों में उदारवादी समझ का अस्तित्व भी है। यह अलग बात है कि दोनों मुल्क उदारवादियों को लेकर एकदम असहज हैं। लेखक पाठक के अंत में कहते हैं, 'जिस प्रकार भारतीय उदारवादियों को भारतीय एहसास का सही प्रतिनिधि मानने पर संदेह किया जाता है क्योंकि वे पाकिस्तान के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं पालते और उनके प्रति दोस्ती का भाव रखते हैं उसी प्रकार पाकिस्तानी उदारवादी भी अपने देश के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं माने जाते क्योंकि वे अपने देश के ही कटु आलोचक होते हैं।'

अतीत वर्तमान को वैध ठहराने के संसाधन देता है। 'विचारधारा और पाठ्यपुस्तकें' अध्याय में लेखक ने भारत और पाकिस्तान के संदर्भों में राष्ट्रीय विचारधारा और पाठ्यपुस्तकों के रिश्ते को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। भारत में 1970 के दशक में बनी इतिहास पाठ्यपुस्तकों में चित्रित स्वाधीनता संग्राम ने धर्मनिरपेक्षता और दक्षिणपंथी सोच ने अपने-अपने ढंग से विभाजन

के सच को देखने की बहस को जन्म दिया। कहना न होगा दोनों विचारों ने बच्चों की स्वायत्त सोच से अपना कोई रिश्ता नहीं रखा। पाठ्यपुस्तकों में 'धर्म के उपयोग' पर भी इस अध्याय में विचार है। पाकिस्तान की अस्मिता में निहित विशिष्टता यानी इस्लामी पहल का विश्लेषण करते हुए लेखक ने पाकिस्तान की शिक्षा नीति का सटीक मूल्यांकन किया है। लेखक इस विशिष्टता की उस पृष्ठभूमि की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में पाकिस्तान का उद्भव हुआ। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तक के निर्माण में इसका विशेष ध्यान रखा गया कि साझी विरासत की तवारीखों को प्रयास पूर्वक चेतना से बहिष्कृत किया जा सके। इसी क्रम में भारतीय उपमहाद्वीप के इस्लाम पूर्वकाल को महत्त्व नहीं दिया गया। पाकिस्तान की इस चेतना से मिलती-जुलती समझ का पिछले दो दशकों में भारत में तीव्र उभार हुआ। कांग्रेस की धर्मनिरपेक्ष विरासत के पतन और हिन्दुत्ववादी भाजपा के उत्थान को कृष्ण कुमार इस तरह देखते हैं- 'धर्मनिरपेक्षतावाद के लिए प्रतिबद्ध संगठन के रूप में कांग्रेस का पतन और भारत में और भारत के पड़ोस में इस्लामी कट्टरता के उदय ने उस पृष्ठभूमि को तैयार किया, जिसकी जरूरत 1990 के दशक में भारतीय जनता पार्टी और उससे जुड़े समूहों के उदय को समझने के लिए थी।' सामूहिक सोच में चुपके से दाखिल तनावों की असली प्रेरक वे पाठ्यपुस्तकें होती हैं जिनकी स्मृति से जीवन का खाका निर्देशित होता है। लेखक ने इस अध्याय में इस विशेष संदर्भ का बखूबी विश्लेषण किया है।

दूसरे भाग का पहला अध्याय है-'प्रतिस्पर्धी इतिहास'। आजादी की लडाई और नए राष्ट्र के भविष्य की चिंता इन दो महावृत्तांतों की तुलना करते हुए जिन तीन लक्षणों के आधार का प्रयोग किया गया है, वे हैं- चर्चा की राजनीति, विकास क्रम और अंत की संकल्पना। लेखक इस अध्ययन में तीसरे आधार को महत्त्वपूर्ण मानते हैं, जिनके चलते उल्लेख की राजनीति तय होती है। इसके लिए वे ए. मेजिल की 'हिस्ट्री मेमोरी', 'आइडेंटिटी', 'हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन साइंसेज' का उल्लेख करते हैं। अंत की परिकल्पना की चर्चा करते समय लेखक ने 1947 के विशेष संदर्भ को विश्लेषित किया है। भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए 1947 के दो मायने हैं। लेखक के शब्दों में, 'पाकिस्तानी महावृत्तांत में आत्मरक्षा और पलायन का भाव अन्तर्निहित है, जबकि भारतीय महावृत्तांत में एक षड़यंत्र को मटियामेट न कर पाने की असफलता का भाव उभरकर आता है।' इसी संकल्पना को आगे बढ़ाते हुए भारत-पाकिस्तान 1947 के बाद इतिहास लेखन की विरोधात्मक या निषेधात्मक मानसिकता गढ़ते हैं। साझे राष्ट्रीय नायक का अभाव इसे और पुष्ट करता है। इस पृष्ठभूमि के चलते ही एक ही व्यक्ति के जीवन के कुछ प्रसंगों को नजरअंदाज किया जाता है तो कुछ पर बल दिया जाता है। जैसे जहां भारतीय पाठ्यक्रम में सर सैयद अहमद खां और इकबाल के आरंभिक जीवन पर बल है और उत्तरार्द्ध की उपेक्षा, वहीं पाकिस्तानी पाठ्यक्रम में उत्तरार्द्ध पर बल है। समाजशास्त्रीय दृष्टि के अभाव के चलते भारतीय स्वाधीनता संग्राम का वृतांत प्रस्तुत करते हुए चंद राजनेताओं के आधार पर मुस्लिम अलगाववाद को व्याख्यायित करने की कोशिश होती है। पाकिस्तानी वृतांत में इस बात पर खास बल है कि बच्चे इसे आत्मसात कर लें कि भारतीय प्रायद्वीप में हिन्दुओं की प्रभावी उपस्थित के बावजूद मुसलमानों ने अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान कायम रखी। लेखक का यह विश्लेषण हमारे प्रचलित इतिहासबोध में एक नया आयाम जोड़ता है कि जहां भारतीय वृत्तांत 'कैसे आजादी हासिल हुई', इस बात पर बल देता है, वहीं पाकिस्तानी वृत्तांत 'क्यों मुस्लिम गृहक्षेत्र की जरूरत पड़ी' इसे केन्द्रीय प्रस्थान बिन्दु मानता है। जहां भारतीय वृत्तांत संघर्ष में मुस्लिम लीग को शुरु से बाहर कर देता है, वहीं पाकिस्तानी वृत्तांत लीग की राजनीति को मुसलमानों के सशक्त 'जागरण' से जोड़ता है।

छठे अध्याय का शीर्षक है 'शुरुआत की पहचान'। 1857 की क्रांति के भारतीय और पाकिस्तानी पाठ में अंतर है। लेखक ने आर.सी. मजूमदार, एस.राय, बिपिनचन्द्र, ताप्ती राय की अवधारणाओं में निहित विशिष्टताओं के माध्यम से भारतीय पाठ्यपुस्तकों की समझ का विश्लेषण किया है। उन्होंने राष्ट्रीय परिषद् और पश्चिम बंगाल की पाठ्यपुस्तकों का भारतीय संदर्भ में विश्लेषण किया है। पाकिस्तानी पाठ का विवेचन जे. हुसैन, के.के. अजीज, अरशद आदि इतिहासकारों की पुस्तकों के आधार पर किया गया है। पाठों का विश्लेषण करते हुए लेखक ने प्रमाण पूर्वक बताया है कि कैसे 1857 का निहितार्थ पाकिस्तान में भारत से अलग है। वे 1857 की पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों में बनी समझ का इस प्रकार उल्लेख करते हैं, 'ब्रिटिश मुसलमानों को भारत पर सदियों तक शासन करने के लिए कभी माफ नहीं किया। इसलिए दोनों समुदायों ने मिलकर मुसलमानों के खिलाफ षड़यंत्र रचा कि वे गरीब, असहाय और बेअसर अल्पसंख्यक बन जाए।' 'जागृति और घबराहट' अध्याय में लेखक यह बताते हैं कि कैसे दोनों देशों के इतिहास 1857 से शुरु होकर ब्रिटिश शासक के खिलाफ विद्रोह की एकरेखीय कहानी कहते हैं। पाठ्यपुस्तकों में उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों के विचारों और उनकी सुविधाओं की अभिव्यक्ति को विश्लेषित करने के समुचित प्रयासों का अभाव है। इनका संबंध जाति और लिंग की दो आधारभूत अवधारणाओं से है। कृष्ण कुमार कहते हैं, -'पुरुषों द्वारा महिलाओं और उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के दमन की जानकारी

बच्चों को देना, 'बच्चों के लिए कौन सा ज्ञान उचित है' इसकी आम अवधारणा से मेल नहीं खाता। कैसे लोग इकट्ठे होकर विदेशी दमनकारियों के खिलाफ लड़े यह कहानी बताना ज्यादा आसान और आकर्षक लगता है। बच्चों के लिए इसकी उपयुक्तता के अलावा इस कहानी से जाति और लिंग से जुड़े मध्यवर्गीय मूल्य और भावनाओं को न कोई नुकसान पहुंचता है और न ही कोई चुनौती मिलती है।' इसी अध्याय में एक उपशीर्षक है, 'शिक्षा का जादू'। इसमें लेखक ने पाकिस्तानी पाठ्य-पुस्तकों द्वारा कांग्रेस को हिन्दू संगठन और मुसलमानों के खिलाफ हिन्दुओं और अंग्रेजों की मौन सहमति की समझ बना वर्तमान द्वारा अतीत को अनुकूलित करने के उद्देश्यों का विश्लेषण किया है। सर सैयद अहमद खां का पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें मोहरे के रूप में इस्तेमाल करती हैं। इसका उद्देश्य है कांग्रेस की हिन्दुत्ववादी संगठन की छवि बनाना। उसी तरह भारतीय वृत्तांत भी अपनी वर्तमान राजनैतिक मजबूरियों और जरूरतों के मुताबिक अतीत के इन प्रसंगों की पुनर्प्रस्तुति करता है। आठवें अध्याय का शीर्षक है 'एकता और बिखराव'। कृष्ण कुमार एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। गांधी के अवतरण को पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें या तो नजरअंदाज करती हैं या उन्हें उपेक्षित भाव से पेश करती हैं। ऐसा उनके उद्देश्यपरक इतिहास लेखन के कारण होता है। गांधी वहां हिन्दू नेता के रूप में चित्रित हैं। 1915 में राष्ट्रीय आंदोलन की कमान गांधी के हाथ में आ गई। 1919 से 1930 की वह निर्णायक अवधि जिसके केन्द्र में गांधी प्रतिष्ठित हैं, भारत में इतिहास लेखन का उल्लेखनीय प्रसंग है। वहीं पाकिस्तान में 1907 के साल को केन्द्रीय महत्त्व प्राप्त है, जिस साल मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। भारत-पाकिस्तान दोनों की पाठ्यपुस्तकों में गांधी की छवि के खंडित पक्ष को प्रस्तुत किया जाता है। कृष्ण कुमार बेहद मूल्यवान टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं, 'पाकिस्तान की सभी पाठ्यपुस्तकों में खिलाफत व असहयोग आंदोलन के तहत गांधीजी को सम्मान से वंचित किया गया है। भारत की पाठ्यपुस्तकों में बडी चालाकी से गांधी के अन्दर के राजनीतिज्ञ को बिल्कुल छिपा लिया गया है, केवल महात्मा को ही पेश किया गया है। बंधुआ श्रोताओं की तरह दोनों ही देशों के बच्चों को यह मौका नहीं दिया गया कि वे समझ सकें कि हिन्दू और मुसलमानों को नजदीक लाने में गांधी को कौन सी चुनौतियों का सामना करना पडा।' 1923 से 1927 के बीच के सांप्रदायिक दंगे दोनों देशों की पाठ्य पुस्तकों में उपेक्षित हैं। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें तो 1920 की राजनीति में 'हिन्दू महासभा' का जिक्र तक नहीं करती। ऐसा पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें एक निश्चित उद्देश्य के लिए करती हैं, बकौल लेखक, 'उन लोगों ने हिन्दू महासभा के प्रभाव के वर्णन की उपेक्षा इसलिए की जिससे उन्हें कांग्रेस को हिन्दुओं का संगठन करार देने में सुविधा हो। कांग्रेस पर आरोप लगाए जा सके कि यह संस्था भारत में हिन्दू राज की स्थापना के लिए वचनबद्ध थी। इसी धारणा की वजह से पाकिस्तानी इतिहासकार गांधी व नेहरू जैसे नेताओं को मालवीय व मूंजे से अलग नहीं कर पाते।' 'विपरीत कल्पनाएं' अध्याय में कृष्ण कुमार ने 'भारतीय संक्षेप' और 'पाकिस्तानी विस्तार' का मर्मपूर्ण विश्लेषण किया है। उनके अनुसार पाठ्यपुस्तकों का 'भारतीय संक्षेप' स्वाधीनता आंदोलन के आखिरी दौर की प्रस्तुति बेहद तेज गति से प्रकट करता है, वहीं 'पाकिस्तानी विस्तार' एक अलग राष्ट्र की मजबूरी और वैधता को दिव्य रूप प्रदान करने की तीव्र और उत्कट चाहत प्रकट करता है। दोनों देश की पाठ्यपुस्तकें विभाजन के लिए जिन्ना को जिम्मेदार मानती हैं, लेकिन जहां भारतीय पाठ्य पुस्तकें उन्हें एक खलनायक के रूप में पेश करती हैं, वहीं पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें उन्हें दैवी रूप प्रदान करती हैं।

अपने-अपने 'राष्ट्रवाद' की विवशताओं की सर्वाधिक मुखर अभिव्यक्तियों का विश्लेषण 'कीर्ति और पीड़ा के आखिरी वर्ष' शीर्षक दसवें अध्याय में किया गया है। अध्याय बताता है, जहां भारतीय पाठ्यपुस्तकें 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की पुनर्निर्मिति भारतीय स्वाधीनता संग्राम के साहस की भावना को सर्वाधिक तरजीह देती है, वहीं पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकें 'लाहौर घोषणा' को महत्त्व देती हैं। विभाजन के संदर्भ में किसी भारतीय पाठ्यपुस्तक में लाला लाजपत राय और सावरकर का जिक्र नहीं आता। वहीं पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों की निरंतरता में सर सैयद अहमद खां, इकबाल, रहमत अली ही नहीं लाजपत राय और सावरकर भी शामिल हैं। हिन्दू राष्ट्रवाद की पाकिस्तानी निर्मिति प्रयास पूर्वक कई संदर्भों को या तो अनदेखी करती हैं या फिर उन सूक्ष्मताओं को नजर अंदाज करती हैं, जिनके चलते समय की विवशताएं रूपाकार ग्रहण करती हैं, बकौल कृष्ण कुमार, 'हिन्दू राष्ट्रवाद के विमर्श और उसकी भूमिका पर पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तकों ने कहीं ज्यादा ध्यान दिया है, लेकिन पाकिस्तानी लेखकों की तूलिका इतनी मोटी है कि वह कांग्रेस और हिन्दू महासभा के अंतर को नहीं दिखा पाती। पाकिस्तानी पाठ्यपुस्तक लेखक तो जिन्ना का रवैया लेकर चलते हैं। 1930 के दशक से उन्होंने गांधी को एक हिन्दू नेता और कांग्रेस को एक हिन्दू पार्टी करार देने की जिद पकड़ ली।

पुस्तक का तीसरे खंड में तीन अध्यायों का संयोजन है-'विभाजन बच्चों की कलम से', 'इतिहास और शान्ति' तथा 'राष्ट्रवादी अस्मिता और राष्ट्रीय बैर'। अतीत की पुनर्रचना के विरोधाभासों, भविष्य दृष्टि और खंडित या एकपक्षीय आयामों के बजाए संश्लिष्ट और बहुलतावादी विवेक की समझ के लिहाज से

इन अध्यायों का संयोजन बेहद उल्लेखनीय है। 'विभाजन बच्चों की कलम से' अध्याय पुस्तक की सफलता का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। लेखक ने जिन भारतीय-पाकिस्तानी 145 स्कूली बच्चों की कलम से भारत और पाकिस्तान के इतिहास, वर्तमान और भविष्य दृष्टि को परखा है, उनके अनेक ऐसे तथ्य भी शामिल हैं, जिनसे पारंपरिक छवियां ध्वस्त होती हैं और सकारात्मक भविष्य की ललक बनती हुई नजर आती है। निबंध का विषय था 'भारत और पाकिस्तान का विभाजन'। निबंधों की विविधता एक चौंकाने वाली सचाई थी, 'क्योंकि भारत और पाकिस्तान की शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के विचारों को निरुत्साहित करती है। वस्तुतः स्वतंत्र सोच का शुरु में ही गला घोंट दिया जाता है और सामूहिक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित किया जाता है।' भारतीय बच्चों द्वारा लिखे गए निबंधों में दो अतिरेक साफ तौर पर नजर आए, 'एक धारा के बच्चों का मानना है कि अंग्रेजों द्वारा हम पर विभाजन थोपा गया। ये बच्चे महसूस करते हैं कि विभाजन का परिणाम बड़ा ही भयावह था लेकिन अब हमें शान्ति से रहना सीख जाना चाहिए। दूसरी धारा में वे बच्चे हैं जो यह मानते हैं कि भारत का विभाजन मुसलमानों के दबाव के कारण हुआ, कि विभाजन को होने दिया गया बिना यह सुनिश्चित किए कि सारे मुसलमान पाकिस्तान चले जाएं। ....वे मानते हैं कि अगर मुसलमानों ने अपना एक अलग देश चुना तो शेष भारत को सिर्फ हिन्दू राष्ट्र होना चाहिए।' सर्वेक्षण के दौरान दूसरी धारा के बच्चों की संख्या काफी कम पाई गई। 145 निबंधों में एक निबंध ऐसा भी पाया गया जिसमें यह कहा गया कि विभाजन से भारत पवित्र हो गया। ऐसा मुसलमानों के प्रति तीव्र नफरत के कारण ही था।

दूसरी तरफ पाकिस्तानी निबंधों में यह कहा गया कि 'विभाजन ने मुसलमानों के साथ भेदभाव को खत्म किया और उन्हें प्रथम श्रेणी के नागरिक बनने का अवसर दिया। एक निबंध कोसोवो के जिक्र के साथ खत्म होता है और कहता है कि 'विभाजन की वजह से भारत में कोसोवो जैसे हालात बनने से रह गए।' पाकिस्तानी निबंधों में दोनों देशों के परमाणु परीक्षण और मिसाइल कार्यक्रमों की आलोचना की गई, पर एक भी भारतीय निबंध में यह भाव मुखर नहीं हुआ। यह अचरज भरी बात है कि भारत और पाकिस्तान संबंधी अवधारणाओं के खाके में इन निबंधों में अभिव्यक्त मत नहीं समाते। 'इतिहास और शान्ति' अध्याय में एक खंड है 'इंतजार के बजाए'। कृष्ण कुमार एक ऐसे नवाचारी उद्यम की परिकल्पना पेश करते हैं, जिसमें दोनों देश के स्कूल मिलकर आगे आएं और आजादी के संघर्ष समेत आधुनिक काल के अध्याय के साझे कोर्स की रूपरेखा तैयार करें और उसे पेश करें। वे उन प्रयासों का जिक्र करते हैं, जिनके तहत जर्मनी और इंग्लैण्ड में हालिया वर्षों में इतिहास की पढ़ाई में सुधार के गम्भीर प्रयास किए गए हैं। वे अपने इस प्रस्ताव की सार्थकता अपरिहार्यता को इन शब्दों में रेखांकित करते हुए अध्ययन का समापन करते हैं, 'अतीत को अच्छी तरह समझना और इसके प्रति जिज्ञासा का भाव जगाना ऐसे समाजों के लिए बड़ी चुनौती है जहां अतीत को नकारने और उसे बदलने की इच्छा ने लोकप्रिय वैधता का लोभ उठाया है।' पुस्तक के अंत में अपूर्वानन्द द्वारा 'बहुवचन' पत्रिका के लिए इसी पुस्तक पर आधारित वह साक्षात्कार शामिल किया गया है, जिसमें अध्ययन की सार्थकता, सरोकारों और राष्ट्रवाद के निर्माण की प्रक्रिया को विश्लेषित करने की प्रभावी कोशिश की गई है।

'मेरा देश तुम्हारा देश' की सार्थकता एक ऐसे समय में और भी बढ़ जाती है जब धीरे-धीरे ही सही दोनों देश के नागरिकों में यह समझ बनती सी नजर आ रही है कि अजनबियत की धुंध खत्म की जाए। ◆

भारत और पाकिस्तान दोनों में इतिहास को लेकर काफी विवाद रहा है, और इस अर्थ में अन्य स्कूली विषयों के मुकाबले इतिहास की अवहेलना कम हुई है। पर यह सोचना तब एकदम गलत साबित होता है जब हम उन विवादों की प्रकृति पर विचार करते हैं जो इतिहास को लेकर चलते रहे हैं। दोनों ही देशों में विवादों का स्वरूप मूलतः राजनैतिक रहा है। इन विवादों में शैक्षणिक महत्त्व या स्वरूप की कोई बात नहीं उठाई गई। भारत में स्कूली इतिहास धर्मनिरपेक्ष और सामप्रदायिक नजरियों के बीच झूलता रहा है। इस विवाद का एक फोकस मध्ययुग की प्रस्तुति पर रहा है और दूसरा इस बात पर कि आर्य बाहर से आए थे या भारत के मूल निवासी थे। हालांकि ये मुद्दे बहुत ही रहस्यमय हैं पर इनका सम्बन्ध समकालीन राजनैतिक विन्यासों से है एवं इन विन्यासों द्वारा संबोधित प्रश्नों से जिनमें यह प्रश्न विशिष्ट रूप से है कि राष्ट्र-राज्य अल्पसंख्यकों से कैसा बर्ताव करता है ?

इसी पुस्तक से एक अंश